चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में मिथिला का व्यापार

लेखक

इन्द्रकान्त झा

प्राचीनकालीन मिथिला में वैश्य का काम था व्यापार करना। लेकिन, आलोच्य-कालीन मिथिला में चारों वर्णों को व्यापार करने का अधिकार मिल चुका था। तब एक बात जरूर थी कि ब्राह्मण के लिए सभी प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करने की छूट नहीं थी। इसीलिए तत्कालीन निबन्धकार चण्डेश्वर अपनी 'गृहस्थरत्नाकर' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ब्राह्मण के लिए सोमलता, मधु, पुष्परस, सूअर, घोड़ा आदि का व्यापार निषिद्ध है। इस जाति को केवल आपत्काल में ही व्यापार करने की स्वतंत्रता थी। उसमें भी इस वर्ग को केवल फल, मणि, क्षौम[२] पट्टवस्त्र, तिल, दही, दूध, जव, पुष्प, तक्र,[३] कौशेय,[४] शाकादि, कंबल, गुरुच्यादि का ही व्यापार करने का अधिकार था।[५]

तत्कालीन समाज में वाणिज्य-व्यवसाय अज्ञात विषय नहीं थे। ज्योतिरीश्वर ने तो अपने वणिक्-पुत्र-वर्णन में सुगन्धित पदार्थ, मसाले, द्रव्य, कपड़े आदि बहुत सारी वस्तुओं की सूची दे दी है।[६]

उस युग में व्यापार का महत्त्व खूब था। इसका कारण यह है कि विद्यापति 'पुरुषपरीक्षा' की एक कहानी में स्पष्ट रूप से कहते हैं—

पतिभक्ता न या नारी व्यवसायी न यः पुमान्।
तावुभौ च विलीयते वृष्टिपाषाणखण्डवत् ॥[७]

—अर्थात् जिस नारी को स्वामी में भक्ति नहीं हो और जिस पुरुष को कोई व्यवसाय नहीं हो,

---

१ चण्डेश्वर, गृहस्थरत्नाकर, सम्पादक, म० म० कमलाकृष्ण स्मृतितीर्थ, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, १९२८ ई०, पृ० ४३४।

२ मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, पृ० १३ एवं २८; तैत्तिरीय संहिता, ६. १. १. ३; मैत्रायनी संहिता, ३. ६. ७।

३ दही और पानी के संयोग से बने हुए पदार्थ को तक्र कहा गया है। तत्कालीन मैथिली के गद्यकार ने भी तक्र का व्यवहार किया है (धूर्त्त समागम, प्रथम अंक)।

४ कौटिल्य, अर्थशास्त्र, टीकाकार, गणपति शास्त्री, भाग १, पृ० १९५; प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, पृ० २७।

५ गृहस्थरत्नाकर, पृ० ४३५।

६ ज्योतिरीश्वर, वर्णरत्नाकर, सम्पादक, सुनीतिकुमार चटर्जी एवं बबुआ जी मिश्र, पृ० ८–साधु. स्वाध्यायिक. सानुवाह. यशवाहन. सुबुधि. सएआन. सारय. सिंहल. मालकार. गन्धवनिक. रत्नपरीक्षक, वेलवार, वामन, प्रभृति अनेक बनिकपुत्र यँ बइसल छथि; पृ० ६५।

७ विद्यापति, पुरुषपरीक्षा, सम्पादक रमानाथ झा, पृ० १२८।

वे दोनों उसी प्रकार से विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार वर्षा में गिरा हुआ ओले का टुकड़ा। पुनश्च, उनका कहना है :—

क्षीयते निःस्रवे कूपे जनोद्धृत जले जलम्।
निरुपाये तथा गेहे क्षीणं भवति वैभवम्॥[८]

—अर्थात् जिस कूप में जल आने का स्रोत नहीं हो, उससे सर्वदा जल निकालने पर उसका स्रोत समाप्त हो जाता है। ठीक उसी तरह जिस घर में व्यवसाय नहीं हो, वहाँ की सम्पत्ति क्षीण हो जाती है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय लोगों की यह धारणा बन गयी थी कि व्यापार करने से धन की वृद्धि होगी। इसीलिए विद्यापति एक वणिक् को व्यापार करने की प्रेरणा देते हैं :—

वृद्धोपदेशतो ज्ञानं प्रतिष्ठां राजसेवया।
यशः पुण्यं च दानेन धनमिच्छेद वाणिज्ययः॥[९]

तद्युगीन मिथिला में व्यापार स्थल और जल दोनों मार्गों से होता था। स्थल-मार्ग के मुख्य साधन हाथी, घोड़ा, बैल, बैलगाड़ी, गधा, ऊँट एवं भार ढोनेवाले मानव थे।[१०] प्रायः इसीलिए उस युग में जो मालिक दास या शूद्र को खरीदते वा भरना लेते थे, वे उस 'भरण-पत्र' में स्पष्ट रूप से लिख देते थे कि अमुक दास 'भारोद्वाहनादि' सकल कार्य करेगा।[११] इसके अलावा उस युग में कुछ मानव 'भाटक' का भी कार्य करता था।[१२]

सामुद्रिक व्यापार नाव से होता था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि एक व्यापारी अपने सौदागर को एक प्रेम-पत्र में लिखता है—

श्रीमतां कुशलमत्र : कार्यञ्च—वयं सिद्धमनोरथाः समुद्रपारादायाताः।
बहित्रञ्च वस्तुपूर्णं मणिपूर्णमविघ्नेनायातमित्युत्साहः कर्त्तव्यः॥[१३]

—अर्थात् यहाँ कुशल है। आपकी कुशलता की कामना करता हूँ। कहना यह है कि हमलोगों की सभी इच्छाएँ पूर्ण हैं। विभिन्न वस्तुओं से भरी और मणियों से लदी हुई हमारी नाव समुद्र के पार से निर्विघ्न लौट आयी। इसके अलावा वे पुरुषपरीक्षा के एक पात्र वंचक के मुख से भी कहलवाते हैं कि "कुमार! वणिगहं स्वभावालुब्धः। तेन भवदीयधनेन वाणिज्यार्थं वहित्रमारुह्य समुद्रपारं गतोस्मि। तत्र बहुगुणं वाणिज्यमभूत्। तस्मादागच्छतो मम तटनिकटे समुद्रे वहित्रं निर्ममज्ज, धनानि नष्टानि। प्राणावशेषोऽहमागतोऽस्मि।"[१४]

---

८ पुरुषपरीक्षा, पृ० १२९।

९ वही, पृ० १२८।

१० मिसरू मिश्र, विवादचन्द्र, सम्पादक, पं० रामकृष्ण झा, पृ० ५३-५४; वाचस्पति मिश्र, विवादचिन्तामणि, सं० पं० लक्ष्मीकान्त झा, पृ० ७८-७९।

११ विद्यापति, लिखनावली, सम्पादक इन्द्रकान्त झा, पृ० ४५, पत्र-सं० ५७।

१२ विवादचन्द्र, पृ० २३-५४।

१३ लिखनावली, पत्र-सं० ५०।

१४ विद्यापति, पुरुषपरीक्षा, सम्पादक, पं० चन्द्रकान्त पाठक, सम्वत् १९८४, पृ० ६९-७०।

—अर्थात्, हे कुमार ! मैं बनिया हूँ । लुब्धता मेरा नैसर्गिक धर्म है । इसलिए मैं आपकी मुद्रा से वाणिज्य करने के लिए नाव पर चढ़कर समुद्र के उस पार गया था । वहाँ व्यापार में भी कम लाभ नहीं हुआ, परन्तु जब मैं वहाँ से लौट रहा था, तब मेरा वहित्र समुद्र के किनारे आकर जल में मग्न हो गया । मेरे सब धन नष्ट हो ही गये, परन्तु कुशल की बात है कि मेरे प्राण बच गये ।

उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि सामुद्रिक व्यापार में काफी लाभ होता था । लेकिन, एक बात यह थी कि तत्कालीन व्यापारी का जीवन खतरे में रहता था और इसके साथ-ही-साथ कभी-कभी समुद्र में नाव डूब भी जाती थी ।

उस युग में अनेक प्रकार की नावें बनती थीं । ज्योतिरीश्वर के 'वर्णरत्नाकर' में 'नौका वर्णना' में कहा गया है—"चाड. चडक. भोपाल. वेश. सरङ्गा. झामट. कास. वृन्दावन. पतकुली. पटोरा. भोनाह. डोङ्गी. धचानी पषिआरी. नओल. गरुडा. वरहिआ. सोरहिया. विसहथी. वइसा. पञ्चिसा. अठइसा सिंहमुखी. व्याघ्रमुखी. घोटकमुखी हंसमुखी. नागफनी. मछतनी. एकठा प्रवृति ये नौकघल साजि साजि धच ।"[१५] नाव पताका, पतवार, करुआर, चामर आदि भी रहते थे ।[१६]

उस युग में अन्तर्देशीय व्यापार के साथ ही वैदेशिक व्यापार भी होता था । ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकर से ज्ञात होता है कि चौदहवीं शताब्दीं की मिथिला में जालन्धर, मध्यदेश, वैदर्भ एवं सौराष्ट्र आदि देशों से भैंस मँगाई जाती थी ।[१७] यहाँ विभिन्न प्रकार के वस्त्रादि भी थे ।[१८] इसके आलाव यहाँ पान के मसाले भी विदेश से मँगाये जाते थे । वर्णरत्नाकर से ज्ञात होता है कि राजा के लिए सिन्धु से कङ्कोला (कबाबचीनी), श्रीहट्ट (सिलहट) से एला, सिंहलद्वीप से जातीफल, मलय से कर्पूर एवं लखनावती से सरसा, सुपारी आदि मँगाये जाते थे ।[१९] ठीक उसी तरह का एक पत्र 'लिखनावली' में भी मिलता है । उसमें राजा की बहन के लिए विदेश से पान के मसाले के साथ-साथ पान मँगाने का भी उल्लेख है ।[२०] इसके अतिरिक्त समय-समय पर विदेशी व्यापारी

१५ वर्णरत्नाकर, पृ० ६७ ।

१६ वही, पृ० ६७-६८ ।

१७ वही, पृ० ३५ ।

१८ वही, पृ० २५ ।

१९ वही, पृ० १३ ।

२० लिखनावली, पृ० ३०—४१ स्वस्ति । पर्णशालातः सप्रक्रियमहापर्णागारिकठक्कुरश्रीअमुकमहाशयाः स्वस्त्रागारिकश्रीअमुकान सम्बादयन्ति । अत्र राजस्वस्त्रागारे ताम्बूले निःकार्याः कृताश्चतुरसमरूपकतया सितासितदूषिताश्च अकारि । श्वेतञ्च पर्णं मृग्यते तेन दूयं पर्णपक्वनिमित्तं प्रहिताः । सम्प्रति मासं व्याप्य तत्रैव तिष्ठथ । अस्त्र राजस्वसृयोग्यपर्णं नास्तीति मत्वा श्वेतपर्णं नीत्वा सत्वरमत्रागमिष्यथ । सहस्रटङ्कानां भीमसेनकर्पूरमपि नीत्वा नेष्यथ । नागरखण्डपर्णसिन्दूरपूगयोरनुसन्धानं कर्त्तव्यम् । यदा मिलति, तदा समानेतव्यमिति ।

विदेश से आने समय अपने मित्रों के लिए सौगात में वहाँ की अच्छी-अच्छी चीजें भी लाते थे।[२१]

तत्कालीन शासक प्रत्येक साल एक से दूसरे देश के साथ व्यापार करने के लिए उस देश की बिक्री किसी के हाथ कर देते थे। लेकिन इसकी सूचना राज्य के सभी बड़े-बड़े व्यापारियों को दे देते थे। इससे ज्ञात होता है कि व्यापारी-वर्ग उसीसे पुनः पट्टा बनाकर दूसरे देश के साथ व्यापार करता था। लेकिन इसके लिए उसे कुछ रकम देनी पड़ती थी। इसीलिए उस क्रेता को राज्यादेश भी भेजा जाता था कि आप खरीद-बिक्री एवं यातायात का प्रबन्ध करेंगे और मूलधन का सोलहवाँ हिस्सा कर के रूप में देंगे। लिखनावली के पत्र से ज्ञात होता है कि एक देश की बिक्री २,८०,००० (मुद्रा) में हुई थी। प्रमाण स्वरूप उपर्युक्त धारण की पृष्टि के लिए सम्पूर्ण पत्र द्रष्टव्य है :—

"श्रीकरणात् समस्तप्रक्रियाविराजमानमहासामन्ताधिपतिमहामहत्तकठक्कुर श्रीअमुक-महाशयाः साधुलोकान् वाणिज्योपजीविनः सर्व्वान् संवादयन्ति। अस्मिन् वर्षेऽशीतिसहस्रोधि-कलक्षद्वयेनामुकदेशस्य वाणिज्यदानं नियम्य क्षत्रियसठ्ठक्कुरश्रीअमुकेषु समर्प्पितम्। यत्र वाणिज्यविषय दानदेयं २,८०,००० तदनयोर्व्यवस्थया क्रयविक्रयौ यातायातञ्च करिष्यथ। मूलषोडशभागञ्च करञ्च दास्यथ।[२२]"

उस युग की मिथिला में स्थान-स्थान पर हटिया (पेठिया) लगती थी। विद्यापति के साहित्य में 'हाट' का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है। उन्होंने हाट से अपने काव्य के लिए अनेक उपमान और दृष्टान्त ग्रहण किये थे। इस प्रसंग के सभी पदों को एकत्र कर देखा जाय, तो तत्कालीन हाट, उसके क्रय-विक्रय, नियम, मान्यता, सिद्धान्त इत्यादि का पूर्ण परिचय मिल जाता है।[२३]

हाट पर वस्तुओं के क्रय-बिक्रय के लिए अनेक घर बने रहते थे। उन घरों की शोभा बढ़ाने वाले हटबइ (हट्टोपजीवी) होते थे। लेकिन हटबइ के बिना हाट श्रीहीन हो जाती थी। इसीलिए, विद्यापति का कहना है :

"सुन्दरि अबकी देखह देह।
बिनु हटबइ अरथ बिहुन।
जैसन हाटक गेह।[२४]

प्रत्येक वस्तु की हाट अलग-अलग सुसज्जित रहती थी। और उस हाट का नाम उसी वस्तु के नाम पर पड़ जाता था; जैसे धनहटा, सोनहटा, पनहटा, मछहटा

---

२१ वही, पृ० ३६-३७, पत्र-सं० ५०।

२२ वही, पृ० २३, पत्र सं० २९।

२३ मित्र—मजुमदार, विद्यापति, पद-सं० २०४,२ पद ३४८; सुभद्र झा, सौंग्स ऑफ विद्यापति, पद २५०, १३०, १२८; उमेशमिश्र, विद्यापति ठाकुर, पृ० १३२-३३ इत्यादि।

२४ मित्र—मजुमदार, विद्यापति, पद २५४।

इत्यादि ।[२५] इससे ज्ञात होता है कि एक ही स्थल पर अनेक वस्तुओं की हाट लगी रहती थी ।

समाज के कुछ व्यक्ति हाट पर वस्तुओं की खरीद-बिक्री से अपनी जीविका चलाते थे । इस प्रकार के व्यापारी को विद्यापति 'हट्टोपजीवी' कहते थे । उस समय राज्य की सभी हाटों की बिक्री कर दी जाती थी । सर्वप्रथम राज्याधिकारी विशेष महामहत्तक साहूकारों के हाथ हाटों की बिक्री कर देते थे । लेकिन इसके लिए सभी हट्टोपजीवियों को खबर दे दी जाती थी । तब वे हट्टोपजीवी साहूकारों से हाट खरीद कर व्यापार करते थे ।[२६]

समाज के कुछ व्यक्ति नदी में नाव चलाकर अपनी जीविका चलाते थे । विद्यापति ऐसे व्यक्तियों को 'पट्टोपजीवी, कहते हैं । राज्य के सभी घाटों की बिक्री कर दी जाती थी । पट्टोपजीवी लोग घाटों को खरीदते थे और भाड़े पर नाव लेकर उसमें घटवारी करते थे । भाड़े पर नाव लेने के लिए उसे नाव के स्वामी को एक व्यवस्था-पत्र लिखना पड़ता था । उदाहरणार्थ एक व्यवस्था-पत्र द्रष्टव्य है—"सिद्धिः ।— लसं २९९ श्रावणशुदि ५ गुरौ अमुकनदीतीरे राउतश्रीअमुकेषु धीवरश्रीअमुकः व्यवस्थापत्रीं ददाति । तदत्रेत्यादि मासि-मासि भाटकमङ्गीकृत्य युष्माकं नौकामहं स्वकार्यार्थं नयामि । अनया नौकया नौकाकृतकं स्वकार्यं करिष्यामि । कार्यावसाने प्रतिमास भाटकं नौकाञ्च समानीय दास्यामि । यत्र नौका १ । (प्रति) मासं (भाटक) टंक २ । यदि मयाऽनवधानेन राजदैवकं नौकाविनाशो भवति, तदा पञ्चमस्थजनितनौकामूल्यञ्च देयं भवतीति । अगार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ।"[२७]

—अर्थात्, सिद्धि । लक्ष्मण संवत् २९९, श्रावण शुक्ल ५, बृहस्पतिवार को अमुक नदी के तट पर राउत श्री अमुक को धीवर श्री अमुक व्यवस्थापत्री देता है । प्रतिमास भाड़ा देना स्वीकार कर मैं आपकी नाव अपने कार्य के लिए लेता हूँ । इस नाव से मैं घटवारी का कार्य करूँगा । कार्य समाप्त हो जाने पर हर महीने का भाड़ा और नाव लेकर दे दूँगा । जहाँ नाव १, प्रतिमाह का (भाड़ा) टंक २ । यदि मेरी असावधानी से अथवा दुर्योग से नाव टूटेगी तो पंच के बीच निर्धारित नौका का मूल्य भी दूँगा ।कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बने और बनाये गये । इससे ज्ञात होता है कि घटवारी करनेवाले व्यापारियों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी । एक नाव का भाड़ा २ रुप्य टंक था ।

समाज के कुछ व्यक्ति मछली, कछुआ, इत्यादि जलचर जीवों का व्यापार करते थे । ये लोग जलाशय से जलचर को मारकर बेचते थे । इस वर्ग में तत्कालीन गोढ़ि, धीवर एवं साहनी प्रभृति मुख्य थे । उस समय राज्य के सभी नदी, नद, पल्वल, पुष्करिणी आदि

२५ विद्यापति, कीर्त्तिलता, सम्पादक, बाबूराम सक्सेना, पृ० २८-२९ ।

२६ लिखनावली, पत्र-सं० ३० ।

२७ वही, पत्र-सं० ८० ।

की बन्दोवस्ती कर दी जाती थी। बन्दोवस्त लेनेवाले व्यक्तियों को यह राज्यादेश रहता था कि वे अपनी सुविधा के अनुसार क्रय-विक्रय कर उचित राज्य-कर दें। उदहरण स्वरूप प्रस्तुत व्यवस्था-पत्र द्रष्टव्य है—

श्री अमुकनगरात् चातुर्द्धरिककार्टिय श्रीअमुकमहाशयाः गोण्ढिधीवर प्रभृतिवर्गान् मत्स्यकच्छपव्यापादकान् समादिशन्ति। विदितमस्तु भवतां नदीनदपल्वल पुष्पकरिण्यादि जलाशयः साहनिश्रीअमुकेषु सहस्रमेकं नियम्य प्रदत्ताः। यत्र नदीनद प्रभृति सकल जलाशये देय १,००० । तदेषां व्यवस्थया जलवधं करिष्यथ। प्रतिवाटि (रि) कां प्रतिजलं यथाव्यवस्थितं करं वास्यति ॥[२८]

व्यापार मे पूँजी का स्थान सर्वोच्च था। इसीलिए विद्यापति का कहना है कि "विभहीन नथिय वाणिज्य[२९]"—अर्थात् वैभव के बिना व्यापार नहीं हो सकता है। अतएव जिन व्यापारियों को पूँजी की कमी रहती थी, वे व्यापार करने के लिए ऋण भी लेते थे। महाजनों को ऋण लेनेवाले व्यापारियों को ऋणपत्री देनी पड़ती थी। इस प्रकार के ऋणों की अदायगी की अनेक व्यवस्थाएँ थीं। लिखनावली के एक पत्र से ज्ञात होता है कि एक व्यापारी व्यापार करने के लिए 'खेपी-व्यवस्था' पर ऋण लेता है। इसके लिए व्यापारी प्रतिज्ञा करता है कि वह प्रत्येक खेपी-व्यापार करने के बाद महाजन को निर्धारित सूद दिया करेगा। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत ऋणपत्री द्रष्टव्य है "सिद्धिः लसं २९९ कार्त्तिकशुक्ल रवौ अमुकग्रामे ठक्कुरश्रीअमुकेषु पैकारश्रीअमुकः ऋणपत्रीं ददाति। श्रीमन्महाशयानां रूप्यटङ्क पञ्चदशतयं खेपीव्यवस्थया वाणिज्यार्थं मया गृहीतम्। यत्र गृहीत रूप्यटङ्क १५। प्रतिटङ्कक खेपी १ शिवाक्षमेकं खेपी दास्यामीति। यत्र प्रतिटङ्कलम्यादत्र शिवाक्ष ३ एवं लाभभूलाभ्यां रूप्यटङ्क १८। अत्रार्थे साक्षिणः अमुकामुकाः कृताभूताश्चेति ॥[३०]

तत्कालीन मिथिला में साझा (Partnership) व्यापार की प्रथा प्रचलित थी। उस युग में अनेक व्यापारी मिलकर एक साथ व्यापार करते थे। इसके लिए अनेक प्रकार के नियम-कानून बने थे। तत्कालीन निबन्धकार चण्डेश्वर, वाचस्पति मिश्र एवं मिसरू मिश्र ने अपनी-अपनी पुस्तक के 'सम्भूयसमुत्थानं' प्रकरण में साझेदारी-व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया है। उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक जगह मिलकर यदि व्यापार करें तो लाभ एवं हानि में बराबर अधिकार होगा।[३१] साझा व्यापार करनेवाले पहले आपस में मिलकर एक व्यवस्था कर लेते थे। यदि कहीं से ऋण लेना रहता था तो

२८ वही पृ० २४, पत्र-सं० ३१।

२९ विद्यापति, कीर्त्तिलता, सम्पादक, उमेश मिश्र, पृ० ४४।

३० लिखनावली, पत्र सं० ७१।

३१ चण्डेश्वर, विवाद रत्नाकार, सम्पादक, महोपाध्याय कमलाकृष्ण स्मृतितीर्थ, पृ० ११३—समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म्म कुर्वताम्।
लाभालाभौ यथाद्रव्यं यथा वा संविदाकृतौ॥
विवादचिन्तामणि, पृ० ४४; विवादचन्द्र, पृ० ३६।

सब व्यापारी मिलकर महाजन को ऋण-पत्री अथवा-व्यवस्था पत्री लिखते थे। इसमें ऋण लेने की सारी बातों की चर्चा कर दी जाती थी। 'लिखनावली' में इस विषय का एक पत्र है। उस पत्र में कहा गया है कि "चार व्यापारी एक साथ व्यवसाय करने के लिए परस्पर व्यवस्था-पत्र देते हैं। हम चारों ही किसी महाजन के धन से व्यापार करने के लिए जा रहे हैं। व्यापार का कार्य सम्पन्न हो जाने पर मूलधन महाजन को दे देंगे। लाभ का धन हमलोग बराबर-बराबर बाँट लेंगे। इस कार्य में अमुक-अमुक साक्षी बनाये गये और बने।"[३२]

साझे के व्यापार में प्रमाद से यदि कोई व्यापारी धन को नष्ट कर देता था, तो उसे वह नष्ट किया हुआ धन लौटाना पड़ता था।[३३] साझेदारों को यह छूट रहती थी कि यदि साझेदार कुटिलतापूर्वक धन नष्ट करे, तो उसे मूलधन देकर निर्लोभपूर्वक हटा सकते हैं और अपनी इच्छानुसार दूसरे साझेदार को रख सकते हैं।[३४] साझे के व्यापार में यदि कोई साझेदार मर जाता था तो उसका अंश (सम्पत्ति) उसके दायाद को दे दिया जाता था। दायाद के नहीं रहने पर उसके सम्बन्धियों को दिया जाता था। यदि सम्बन्धी भी नहीं रहता था तो सब साझेदार अपने में उसके अंश को बाँट लेते थे। लेकिन यदि मृतक साझेदार विदेश का रहता था तो उसके धन (अंश) की रक्षा तत्कालीन राजा करते थे। राजा के यहाँ दस वर्षों के अभ्यन्तर यदि मृतक के दायाद या सम्बन्धी आते थे तो उसे वह धन दे दिया जाता था और यदि उस अवधि तक कोई नहीं आता था, तो वह धन राजा का हो जाता था।[३५]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी की मिथिला में साझेदारी में चलनेवाले व्यापारों की देख-रेख राजा भी करते थे।

---

३२ लिखनावली. पत्र-सं० ७४।

३३ विवादरत्नाकर, पृ० ११४ ; विवादचन्द्र, पृ० ३७ ; विवादचिन्तामणि, पृ० ४४।

३४ विवादरत्नाकर, पृ० ११६ ; विवादचन्द्र, पृ० ४५।

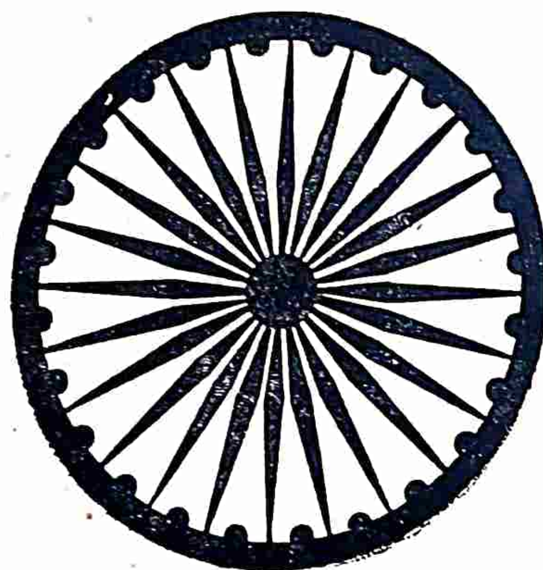
३५ विवादचन्द्र, पृ० ३८ ; विवादरत्नाकर, पृ० ११६-१७।

THE JOURNAL
OF
THE BIHAR RESEARCH SOCIETY

VOL. LIV JANUARY—DECEMBER, 1968 PARTS I-IV

CHIEF EDITOR

Dr. S. V. Sohoni, M. A., I. C. S., Vidyāvācaspati



PUBLISHED BY

THE BIHAR RESEARCH SOCIETY, PATNA

Price Rs. 20/-